—अध्याय —पंचम्—

गुजरात और पंजाब के संत कवियों की गुरुतत्व अवधारणा एक तुलनात्मक अनुशीलन—

हिन्दी संत साहित्य के सर्वप्रमुख कवि संत कबीर नें गुरु तत्व की चर्चा छेड़ते हुये कहा है''सतगुरु के समान हमारा 'सगा' वा आत्मीय दूसरा कोई भी नहीं है ''—1। क्योंकि उनके अनुसार ''भावभगति वाली नौका को खेकर हमें वही पार लगा सकता है ''—2। तथा '' गुरु कृपा द्वारा जिनके हृदय के कपाट खुल जाते हैं वे फिर संसार में आकर जन्म ग्रहण नहीं करते हैं '—3। वास्तव में गूढ़ रहस्य का उद्घाटन गुरु ही किया करता है निगुरे को ऐसा सुअवसर प्रप्त नहीं हो पाता— 4। परब्रह्म द्वारा सहस्र दल कमल के मोतियों की वृष्टि हो जाने पर उन मोतियों को केवल 'सगुरे' ही चुन पाये निगुरे अपनें प्रयत्न में असफल रह गये – 5। गुरु नानक जी भी गुरु के विषय में कहते हैं कि ''वह किसी ऐसे समुद्र जैसा 'रत्नाकर' है जिसमें अनेक रत्न भरे पड़े हैं , —6। वह किसी ऐसे सरोवर जैसा है जिसमें हम प्रिय हंसों के समान बनें रहनें लगते है— 7। नानक तो यहा तक कहते है '' चाहे जो भी हो जाय , गुरु सहायता के बिना किसी को भी हरि की उपलब्धि आज तक किसी को नही हो पाई है – 8। संत हरिदास निरंजनी के कथनानुसार – ' हरि तो सब कहीं भरपूर है ,किन्तु समगुरु के मिलजाने पर ही , उसे उपलब्ध किया जा सकता है – 9। इस बात की पुष्टि दादू दयाल जी के कथनानुसार –' राम जैसा रत्न हमारे घट—घट में विद्यमान है जिसे कोइ लख नहीं पाता ,किन्तु सद्गुरु के शब्दों द्वारा हमें उसकी उपलब्धि तक सहज ही हो जाती है – 10।

सद्गुरु हमारी सुध—बुध एवं आत्मा को इस प्रकार से प्रभावित कर देता है जिससे हम एक साधारण कीट से स्वयं भृगी बन जाते हैं – 11। इस तरह 'सद्गुरु हमें एक पशु से मनुष्य ,मनुष्य से सिद्ध, एवं सिद्ध से देवता बना देता है और अंत में निरंजन की सीढ़ी पर भी चढ़ा देता है —12। दादू दयाल के

पदानुसार अत्मज, ज्ञान ध्यान 'गहिबा' 'रहिबा' आदि सभी का केवल 'गुरुमुषि ' पर ही आश्रित रहना बतलाया है –13। इसका सर्मथन संत नाम देव के पदानुसार भी होता है ।

'जउ गुरु देव न मिलै मुरारी'

से आरंभ कर अनेंक पंक्तियों में निर्मित किया है –14। संत कबीर के मतानुसार "सदगुरु की महिमा अनन्त है और उसनें मेरे लिये अनंत उपकार किये है क्योकि उसनें अनंत के दर्शनार्थ , मेरे भतर अनेक लोचन खोल दिये हैं " –15।" मै लोकवेद के परंपराओं के पीछे अंधी दौड़ में दौड़ रहा था वहां उन्होनें सामनें आकर मेंरे हाथ में अंधी दौड़ से निकाल ,ज्ञान रुपी दीपक मुझे दिया , जिसमें कभी न घटनें वाला स्नेह भाव रुपी तेल उन्होनें भर दिया व कभी न खत्म होनें वाली बाती ' उसमें डाल दी –16। मै अपनें उस गुरु की दिन में कितनें बार बलिहारी जाता हूँ जिसनें मुझे मनुष्य से देवता की कोटि में पहुँचानें में तनिक सी भी देर नहीं की –17। संत कबीर के कथनानुसार "सद्गुरु नें मुझे लक्ष्य बना प्रीति रुपी तीर छोड़ा जो सीधे मेरे भीतर लगा और आज तक भीतर ही है । उस तीर के लगते ही मै गिर गया और मेरे कलेजे में एक दरार पड़ गई – 18। एक विवरण के अर्न्तगत 'कृपालु गुरु की की सहायता द्वारा मेरा हृदय कमल विकसित हो गया, भ्रम रुपी अंधकार का नाश और परं ज्योति का उजियारा दसों दिशाओं में फैल गया । परिणाम स्वरुप मेरे मृतक से बनें मेरे शरीर में फिर से प्राणों का संचार होने लगा व उसनें धनुष की कमान फिर से कस ली , भय के मारे अहेरी काल भी भाग गया । मैने अकल, अव्यक्त एवं अनुपम ब्रह्म का साक्षत्कार भी किया जिसका वर्णन करना मेरे लिये किसी मूंगे द्वारा मिठास का परिचय देने जैसा दुष्कर कार्य है । जो मन ही मन हर्षित होता है परंतु उस हर्ष का एक संकेत मात्र देकर शांत हो जाता है मेरा शरीर कांच से कंचन होगया और मन विना वाणी के ही मान गया जिसे मैने अपनें आप में ही आप का अनुमव कर लिया तथा आत्म तत्व स्वतः सूझनें लग गया । उस ज्ञान

को प्राप्त कर मेंरी 'तारी'लग गई और आत्मा से आत्मा मिल गई –19। " सतगुरु नें तत्व का कथन किया था जिसके मूल को मैनें अपनें अनुभव के विस्तार के ग्रहण कर लिया –20। संत नामदेव के कथनानुसार 'सद्‌गुरु नें मुझे परम् तत्व का निकट विद्यमान बतला दिया –21। इन्हीं के कथनानुसार "सतगुरु नें मुझे 'निर्वाण पद 'के विषय में भी बतलाया था–22 ।

नानक जी के कथनानुसार –"मेरे मन मुझे तो गुरु के वचनों द्वारा सारे सुखों का भंडार प्राप्त हो गया । उनके उपदेशों से मेरी बुद्धि की चंचलता नष्ट हो गयी एवं उजियारे के होते ही सारा अंधकार लुप्त हो गया । मेरा चित्त गुरु चरणों में लगते ही यम का मार्ग अवरुद्ध हो गया । भय के बीच उस निर्भय को मै पाकर अपनी सहज वृत्ति में आ गया –23। "गुरु के उस प्रसाद से मेरी दुर्गति खो गई एवं मैं सर्वत्र उसी को देखनें लग गया "–24। गुरु के कथनानुसार उसे छोड़कर कोई भी दूसरा नहीं है तो मै किसी दूसरे की ओर उन्मुख होकर उसका पूजन क्यों न करु –25। ' अब तो मै मूल्य देकर खरीदा गया गुलाम हूँ । गुरु के वचनों पर ही हाट में मैं बिका हूं। उसनें जिधर मुझे लगा दिया उधर मै लगा हुआ हूँ किसी गुलाम की कोई चतुराई 'बुद्धि' ही क्या हो सकती है –26 "।

संत दादू दयाल के कथनानुसार " सद्‌गुरु नें ही मेरे मन को फेरकर उसे ऐसा रुप दे दिया है कि पांचों ज्ञानेन्द्रियों में विचित्र परिवर्तन आ गया तथा उन्होनें अनुपम रुप धारण कर लिया है –27। सद्‌गुरु नें मुझे काल के मुख से निकाल कर बाहर कर दिया ,मेरे श्रवणों में शब्द सुनाकर मानों मुझ मृतक को जीवित कर दिया सदगुरु नें मेरी शिखा पकड़कर इस संसार में डूबनें से बचा लिया , नाम की नौका पर चढ़कर मुझे पार लगा दिया–28 ।

इसी बात को दूसरे ढ़ग से दादू जी ने इस प्रकार से विस्तार देते हुये कहा है । " अरे भाई मैनें तो अपनें घर के भीतर ही अपनें लिये मूल आश्रय पा लिया । सद्‌गुरु द्वारा ढूंढ़ कर चेता दिये जानें पर मै , सहजावस्था में

आ गया । जिस घर की प्राप्ति के लिये सब कहीं दौड़–घूप कर करता आया था वह उस 'सद्गुरु' नें 'महल' खोलकर उसमें दरसा दिया , रहस्य का ज्ञान हो गया ,भ्रम भाग गया जो कुछ सत्य है वहीं मेरा मन लीन हो गया । तथा वह अचल अंतिम लक्ष्य मिल गयाअब अन्यत्र मुझे जानें की जरुरत नही रही–29। "

संत कबीर के कथनानुसार गुरु हरि हमारा गुरु एवं पीर है –30। " अपनें राम को कबीर जी नें " तुम मेरने सद्गुरु हो और मै तुम्हारा नया चेला हूं " – 31। कहा है संत रैदास "माधव ही सद्गुरु है और सारा जगत उसका चेला मात्र है "–32। कहते हैं । संत हरिदास निरंजनी "समर्थ गुरु सन्य एवं स्नेही राम ही है –33। " कहते हैं । संत दादू दयाल अपनें गुरु के लिये 'आप निरंजन योगी '–34।'गोविन्द –35।' एवं 'हरिगुरु कहै हमारा–36'। भी कह जाते हैं । संत नामदेव "माई गोव्यंदा,बाप गोव्यंदा, जाति'पाति गुरुदेव गोव्यंदा" आदि कहते है। समय उसे ज्ञान ,ध्यान, पानी, पूजा, तक बतलानें लग जाते है–37। इसी कारण उसके 'नामों को महत्व देते है–38। कबीर नें 'गयान गुरु ले वांका'–39। एवं "मै सो गुरु पाया जाका नाउ विवेको –"40। जैसे शब्दों और वाक्यों में प्रयोग किया है ।

ये लोग परमात्मा को ही गुरुवत मानकर भी चलते थे परंतु अपनीं बात को कुछ दूसरे ढ़ग से प्रस्तुत करते थे जैसे कबीर कथनानुसार "मै हरिभक्ति की अभिलाषा करता हूँ ' गोविन्द स्वयं 'जगत गुरु' है–41 । दादू दयाल कहते है " वहां उस' ठाम 'में में जगत गुरुपीर बैठा है –42। कबीर 'परमगुरु ' की भी संज्ञा देते दीख पड़ते हैं –43। इस शब्द का प्रयोग संत हरिदास निरंजनी –44।' एवं दादू दयाल –45 भी करते पाये जाते हैं । मलूक दास कहते है। कि अब मैनें ' पूरा सद्गुरु' पा लिया है "–46 मैने अपनें हृदय के भीतर ही मक्का वा हज देख लिया तथा 'पूरा मुर्शिद ' पा लिया –47। संत दादू दयाल 'गुरु एवं चेले' के विषय में कहते हैं कि "वास्तव में सब किसी के अपनें भीतर ही ,गुरु और चेला इोनों एक साथ विद्यमान है , तथ्य यह है कि भीतर ही भीतर उपदेश

दान भी हो जाया करता है –48।

संत कबीर के कथनानुसार 'पहले गुरु का परिचय मिल जाता है उसके बाद सद्‌गुरु शिष्य को तारता है –49। संत नामदेव की एक रचना के उल्लेख में यह प्रतीत होता है कि उनके प्रत्यक्ष गुरु संभवतः 'खेचर जी ' वा संत विसोग खेचर रहे होगें जिनके चरणों में लगनें की चर्चा आपनें की है–50। इनकी गणना उनके समकालीन ही की जाती रही होगी । संत हरिदास निरंजनी नें अपनें गुरु के रुप में गुरु गोरख का नाम लिया है –51। संत किनाराम अघोरी के मतानुसार "गुरु दत्तात्रेय नें कृपा करके स्वयं इनके सिर को स्पर्श किया था–52। संत चरणदास जी के कथनानुसार उन्हें स्वयं शुक देव जी मिल गये थे जो 'व्यासपुत्र' एवं "श्री मद् भागवत के रचनाकार हैं । –53। संत धर्म दास एवं संत गरीब दास का कहना है कि उन्हें संत कबीर नें दर्शन देकर कृतार्थ किया एवं इतना ही नहीं बल्कि उनका मार्ग दर्शन भी करा दिया था –54। संत पानप दास की रचनाओं के संग्रह 'पानप बोध' –55 से ऐसा लगता है कि ये संत कबीर एवं गुरु नानक दोनों के ही शिष्य थे –56। संत दादूदयाल के कथनानुसार " मेरा गुरुदेव मुझे " गैब" वा परोक्ष की सी दिशा में मिला था , किन्तु उसनें जैसे मेरे सिर के उपर अपना हाथ रख दिया जिसके द्वारा मुझे उत्कृष्टम उपलब्धि हो गई –57। "उसनें सहज ही मिलकर मुझे कंठ से लगा लिया–58।"

सुन्दरदास जी के कथनानुसार 'दादू दयाल जा को सद्‌गुरु नें अकस्मात आकर दर्शन दिये थे , उसे किसी नें पहचाना नही , उनका नाम वृद्धानन्द था उनका कोई ठौर ठिकाना नहीं था , वह जहां चाहे अपनें सहज रुप में विचरण करता रहता है उसनें दादू ती को निकट बुलाकर गले लगा लिया और उसके द्वारा इनके मस्तक पर हाथ रखे जाते ही इनकी दिव्य दृष्टि खुल गई –59। दादू के सद्‌गुरु 'वृद्धानन्द ' का नाम कल्पित नाम है । तुलसी दास जी की रचना 'घटरामायण ' से यह पता चलता है कि इनका पथ प्रदर्शन

करनें वाला गुरु कोई 'कंज' था–60। अन्यत्र ये अपनें आप को ' पंकज गुरु चेरा' अर्थात उसी कंज का शिष्य होना स्पष्ट शब्दों में स्वीकार कर लेते है –61। यहाँ कंज, पंकज अथवा अन्यत्र वाले 'पदम'– 62 शब्दों द्वारा केवल 'कमल' के रुप में कोई सामान्य सा अर्थ निकाल लेना पर्याप्त नहीं हैं । संत तुलसी साहब नें एक स्थल पर प्रत्यक्षतः उसी को "मूल संत दया सतगुरु पिउ " –63 के रुप में निर्दिष्ट किया है ।

संत शिव नारायण की रचना"ग्रंथ गुरु अन्यास में उपस्थित की गई अनुभूति के अनुसार " उसका अचानक उपस्थित हो जाना किसी भवन के भीतर दीपक जल उठनें के भांति जान पड़ा , इनका हृदय फूल सा गया , रोमांच हो आया , प्रीति उत्पन्न हो आई । मुख से कुछ भी कह पाना अति दुष्कर हो गया परंतु यह अनुभव तो हुआ कि उसनें इनके सिर अपना हाथ रखकर इन्हें आर्शिवाद दिया –64। इन्हो नें अपनें गुरु को अत्यंत ' दुखहरण' भी बतलाया है एवं इनके दर्शन बड़े भाग्य से ही सुलभ होते हैं इनका स्मरण मात्र करनें से मानव मन को शश्वत शांति की उपलब्धि हो जाती है :–65। इन्हो नें तो अपनें मनतव्य को यहां तक व्यक्त किया है कि " गुरु विष्णु के समान है । ये दोनों एक ही हैं , उन दोनों को ' एक मात्र जान लेना चाहिये वे ही उत्पन्न एवं पालन कर्ता है –66। संतो ने प्रत्यक्ष गुरू को ही प्रायः परमात्म तत्व के रूप में स्वीकार किया है, अथवा वे उसके प्रतीक रूप में अपने सहज ज्ञान को ही स्वीकार कर लेते थे –67 । दीक्षा गुरू शब्द रूढ़ हो जाने के कारण संतो ने ज्ञान गुरू के लिए 'सतगुरू शब्द 'का व्यवहार अधिक उपयुक्त समझा हो ।

भागवत में गुरु सेवा का उल्लेख सर्वप्रथम हुआ है । क्योकि गुरु सेवा से सब कुछ सुलभ हो जाता है । सत, रज ,तम, भक्ति के बहुत बड़े बाधक हैं । इनको जीतना चाहिये । गुरु भक्ति करनें से तीनों गुणों पर सरलता से विजय पाई जा सकती है । गुरु अपनें शिष्य से तत्व की बात बता देता है छिपाता नहीं

। गुरु साक्षम् भगवान का रुप है , ज्ञान रुपी दीपक वह शिष्य को देता है गुरु को साधारण मनुष्य नही समझना चाहिये ।

संत काव्य में गुरु पर ही अत्यधिक महत्व दिया गया है । कबीर अपनें ग्रंथ के गुरु में ही गुरु को भृगीं बताते है–68। प्ररम्भ के चारों पद गुरु से सम्बंधित हैं –69। अपनें भीतर की वसतु गुरु ही दिखलाता है –70 ' सतगुरु महिमा को अंग के अंर्तगत अनेंक दोहे केवल गुरु की महत्ता के संबंध में है –71। कबीर के अनुसार बिना गोविन्द की कृपा के गुरु नहीं मिलता –72। गुरु मिल गये यह बहुत अच्छा हुआ नहीं तो बड़ी हानि होती –73। जब तक गुरु नही मिलता शिक्षा पूर्ण नही होती , मनुष्य घर–घर भीख मांगता रहता है –74। प्रेम का पासा खेलनें में सद्‌गुरु ही दॅाव बताता है –75। गुरु जब शिष्य पर रीझ जाता है तब प्रेम का प्रसंग बता देता है , शिष्य के समस्त अंग उसमें भग जाते है–76।

संत साहित्य में स्वामी रामानन्द की कविताओं का एक पद उपलब्ध है। जिसमें सदगुरु की महिमा का बखान है –77। कि ' हे सतगुरु मै तेरी बलिहारी जाता हूँ । तूनें मेरे समस्त भ्रम काट दिये है–78 । संत चरनदास के अनुसार ऐसा सद्‌गुरु करना चाहिये जो जीते जी मार दे , जन्म' जन्मान्तर की जो वासना है उसे जाला दे –79। सद्‌गुरु का शब्द नाविक के तीर के समान लगता है , हृदय में कसक सी होती है , किन्तु तीर निकलता नही प्रम की पीड़ा का उदय हृदय में हो जाता है –80। कबीर नें गुरु को गोविन्द के समकक्ष रखा है –81। गुरु का महत्व सूफी के संत काव्य में भी उसी प्रकार स्वीकार किया गया है । सूफी साधक पीर के द्वारा प्रेम भाव को जगानें वाला होता है इष्ट से संबंध स्थापन करनें वाला होता है –82। जायसी प्रेम मार्ग की मांझी गुरु को मानते हैं –83। उनके अनुसार गुरु ही विरह की चिनगारी शिष्य के हृदय में डालता है –84। किलकिला समुद्र का वर्णन करते हुये जायसी का कथन है कि तहां आकर संत डोल जाता है वहां गुरु का साथ अति उत्तम है। जिससे

साधक की नइया पार हो सकती है –85।

दार्शनिक विचार धारा (सिद्धांत पक्ष) ब्रह्मः–

बुद्धि मूलक आध्यात्म – दर्शन में पार लौकिक सत्ता के नाम–रुप एवं गुण धर्मों का निरुपण का प्रश्न बाद में आता है । सर्वप्रथम अस्तित्व को ही असंधिग्द रुप से सिद्ध किया जा सकता है । कबीर नानक अवं अखा नें सृष्टि के बाद की स्थिति पर विचार करते हुये उसके अस्तित्व को सिद्ध करनें का प्रयत्न किया है उनकी मान्यता है कि सभी प्रकार के एकान्तिक अभाव से भाव का अथवा शून्य से सृष्टि का, सर्जन संभव नहीं है । अतः सृष्टि के पूर्व जिसका अस्तित्व था अथवा पिंड व ब्रह्मांड का सर्जन जिससे हुआ है वही परं सत्य है । दूसरे यह कि जिस प्रकार अभाव से भाव का सर्जन संभव नहीं उसी प्रकार भाव का अभाव में विलय भी संभव नहीं है । अंततः यह कि दृश्य जगत जिसमें लय होता है, या पिण्ड व ब्रह्मांड के विलय होनें पर जो शेष रहता है वही परम सत्य है –86। इस प्रकार दोनों कवियों की मान्यता है कि सृष्टि के आदि व अंत में जिसका अस्तित्व सिद्ध होता है वही सत्य व नित्य है । वही अराध्य व साध्य है–87।

पारलौकिक सत्ता का अस्तित्व सिद्ध करनें में इन कवियों नें जिस युक्ति को स्वीकार किया है वह परंपरामुनोदित भी है –88। क्योकि श्रद्धा मूलक आधिवैदिक दर्शन से असंतुष्टि बुद्धि नें जब यह प्रश्न किया था कि प्रलय के समय कुछ भी शेष न रहा था । अदिति के पुत्रों के रुप में देवता सृष्टि के बाद अस्तित्व में आये तो उस समय किसका अस्तित्व था ?–89। इसका समाधान था कि देवताओं से पूर्व अवयक्त से व्यक्त की सृष्टि हुई–90 । पूर्व जीव को किसनें देखा इसका संभावित समाधान था कि उस समय श्वास – प्रश्वास की किया के बिना जीवित उस एक के अतिरिक्त कुछ भी न था –91 बुद्धिमानों नें बुद्धी के द्वारा सोचकर अव्यक्त से व्यक्त की सृष्टि स्वीकार की है

—92। ऋग वेद का यह ' अव्यक्त उपनिषदों का ब्रह्म है । जिसके विषय में कहा गया है कि इस देहादि से छूट जानें पर जो अवशिष्ट रहता है वही वह है—93 जिससे सब भूतो की उत्पत्ति होती है । जिसके आश्रय से ये जीवित रहते है । और अंत में उसी में लीन हो जाते हैं , उसी विशेष रुप को जाननें की इच्छा कर —94 जगत की उत्पत्ति और लय एंव स्थिति के कारण —भूत उपासना करें इत्यादि—95।

संतो की भाषा में इसे 'आदि विचार अंत विचार' मूल विचार एवं वंश विचार आदि कहा गया है —96। अखा की रचनाओं में इस कार्य — कारण विचार, स्थूल, सूक्ष्म विचार लोभ—प्रतिलोभ पद्धति व्यक्ताव्यक्त विचार सगुण निर्गुण विचार आदि भी कहा गया है इस प्रकार इन कवियों नें स्थूल व इष्ट के अस्तित्व के कारण का अनुमान करके सुक्ष्म— व अदृष्य सत्ता के अस्तित्व को सिद्ध किया है।

यहाँ कुछ अन्य तथ्य भी सामनें आते हैं ,एक तो यह सृष्टि कार्य रुपा है , अतः इसका कोई सचेतन और साव्यवी कर्ता होना चाहिये — क्योंकि निश्चेष्ट व निर — अवयवी सत्ता के किसी कार्य के संपादन का संभावना नहीं दूसरे यह कि सभी प्रकार की नाम रुपात्मक सृष्टि जब अनित्य है तो इसके आदि क अन्त में जो सत्य व नित्य सत्ता है वह निश्चय ही नाम रुप से परे होगी । इस प्रकार ब्रह्म के परस्पर विरोधी गुण धर्म वाले दो रुप होनें चाहिये ।
1—कर्ता रुप ,2— कारण रुप, कारण रुप में संतों की भाषा में उन्हें ' हद बेहदे' प्रकट गुप्त एवं सगुण— निर्गुण आदि , तो उपनिषद कारों की भाषा में क्षर व अक्षर ,कार्य व कारण , अपर व परब्रह्म, आदि जो आर्चाय शंकर की भाषा में औपाधिक ब्रह्म एवं निरुपाधिक ब्रह्म कहा जाता है ।

यदि सत्ता एक ही है और नाम रुप अनित्य है तो उसका उक्त कर्ता रुप निश्चय ही द्वितीय का कार्य और अनित्य होगा और इसलिये वह अराध्य और साध्य नहीं हो सकता है कबीर और अखा नें अपनें अराध्य और साध्य को

नाम' रुप व जन्म–मरण से मुक्त सत्य व नित्य बताते हुये –97 निर्गुण कहा है –98। उत्पत्ति वृद्धि एवं लक्ष के विकार से युक्त सभी ' सगुण' अस्तित्वों को अनित्य माना है –99। बृहदारण्य कोपनिषद "2/3/1" में ब्रम के दो रुपों मुर्त एवं अमूर्त का वर्णन करते हुये प्रथम को मूर्तिमान , मर्त्य स्थित एवं सत् और द्वितीय को अमूर्तिमान , अमृत अस्थित एवं व्यत् कहा गया है –100। किन्तु यह व्यक्त सगुण रुप एक तो ब्रह्म का ही रुप है , दूसरे माया सृष्टि के रचना से इसका सीधा संबंध है अतः अराध्य न होनें पर भी इसको भुलाया नहीं जा सकता है अतः इन कवियों नें ब्रह्म के दोनों रुपों को स्वीकार किया है । ईशोपनिषद 'मंत्र 14' में ब्रह्म के सम्भूति 'कार्य ब्रह्म' और असम्भूति ' कारण ब्रह्म' दोनों रुपों की उपासना को आवश्यक बतलाया गया है । और इनकी उपासना का फल अमरत्व की प्राप्ति कहा गया है ।

कः:– व्यक्त ब्रह्मः:– ब्रह्म के व्यक्त स्वरुप को शास्त्रकारों नें उसका विश्व रुप भी कहा है जिसका वर्णन जीन प्रकार से किया गया है ।

1– उसे असंख्य अवयवों वाला कहकर 2– सूर्य ,चंद्र, द्युलोक, अंतरिक्ष ,दिशायें एवं पंचभूति को उसके अंग बताकर –101। सभी नाम रुपों को उसी को व्यक्त हुआ बता कर –102। प्रथम दों में से किसी को भी कबीर नें व्यक्त ब्रह्म का वर्णन नहीं किया है उन्होनें अपनी एक उक्ति मे–103 उसे करोणों ,सूर्यो ,महादेवों , ब्रह्माओं एवं दुर्गाओं आदि से सेवित कहा गया है । विद्वानों नें उसे विराट स्वरुप का वर्णन माना है लेखक इसे उसके वैभव का वर्णन मानता है–104। जबकि अखा नें उसके अव्यवी रुप का भी वर्णन किया है –105। अपनीं एक उक्ति उन्होनें बहुत से पग हाथ नेत्र, एवं नासा आदि अवयवों से युक्त कहा है–106 । तो अन्य उक्ति में सकल चरणों से चलनें वाला , सब कानों से सुनने वाला प्राण त्याग व ग्रहण करनें वाला , सब नेत्रों से देखने एवं सब शब्दों में बोलनें वाला कहा है–107 । उसकी ये सभी उक्तियां श्वेता उप. "3/3,3/14एवं 3/16" के सानुरुप है। ब्रह्मके इस सगुण रुप को इन कवियों

नें जीव काटि में माना है –108। इसका व्यक्त रुप जीव रुप के गुण धर्मों से युक्त होता है –109। इन कवियों के अनुसार जीव क उपासना का विषय यही कृत्रिम या कार्य रुप ब्रह्म है ।

गीता में सगुण रुप की उपासना को भक्तों के लिये सरल सुगम कहा गया है और आचार्य शंकर नें इसी उपासना का विषय ,सबका अध्यक्ष, सृष्टि का कर्ता –हर्ता देश 'विशेष का अभियन्ता एवं कर्म फल दाता कहा गया है –110। कबीर नें इसी को सृष्टि कर्ता ,ब्रह्मा या कुलाल कहा है –111। अखा नें पंचीकरण , गु. शि. संवाद एवं चि. वि. संवाद एवं गीता 7– आदि रचनाओं इसके स्वरुप व लक्षणों का विस्तृत उललेख किया है । उनकी एतद्विषयक मान्यता शंकराचार्य के विचारों के सानुरुप है।

अव्यक्त रुप में ब्रह्म निर'अवयवी अथवा अनुरुप हैं –112। इसलिये एक तो वह इन्द्रियातीत होनें के कारण 'मन वाणी' के लिये अगम अगोचर है –113। दूसरे निविशेष व अनुपम है , इसलिये उसे किसी के सदृश्य भी नहीं कहा जा सकता है –114। तीसरे उसे प्रप्त होनें पर दृष्टा अशेष हो जाता है –115 । अतः वह गूंगे के शर्करा 'स्वाद सदृश –116 अनुभवे कगम्य , परंतु वाणी से परे है ।

उपनिषत्कारों नें भी ब्रह्मा के इस स्वरुप को इन्द्रियातीत ,–117 मन की वाणी कहनें का आशय यह है कि ब्रह्म का यह रुप मनुष्य के लौकिक ज्ञान व अनुभव से परे हैं –118। अतः उसे वस्तु जगत के नाम रुप ,अवस्था–भेद, लिंग भेद,माप–तोला एवं गिनती ज्ञान आदि से परे–119 सर्वविवर्जित , सर्वातीत–120 , और अनुपम –121 , आदि बताकर उसके रास स्वरुप का वर्णन इन कवियों किया है । आलोचय कवियों नें भी इनके रुप का ज्ञान करानें का प्रयत्न किया है । इसी दृष्टि कोण से उन्होनें सत्य–122, ज्ञान,–123, आनंद,–124, काल–125, पवन–126, मन–127, आकाश–128, पुरुष–129 ,पक्षी–130, सुगन्ध–131, अग्नि–132, सागर–133, वृक्ष–134, सहज–135,

रस–136, तेज–137, शब्द–138, एवं शून्य–139, आदि को ब्रह्म कहा है । कबीर नें उसके रंग,रुप–140, तो अखा नें उसे वैराग्य, विरह, बेल एवं कवच, आदि के रुप वाला भी कहा है ।

उक्त सभी ब्रह्म के वास्तविक स्वरुप न होकर उसके गुण धर्म एवं क्रिया आदि संबंधी लक्षणों के द्योतक है । दसरा यह कि सत्य ज्ञान , वैराग्य एवं विरह को ब्रह्मा का रुप कहनें का कारण इन कवियों द्वारा साधक ,साधना एवं साध्य में अद्वैत की स्वीकृति है ।

नाम और संख्या :– उसे अनंत नामो वाला कहा जाता है –141। वे नाम रुप को अनित्य मानकर उसका कोई भी नाम रखनें के पक्ष में नहीं हैं–142 । विरोधाभाष के समाधान में कबीर की वह उक्ति महत्वपूर्ण है जिसमें उन्होनें कहा हैं कि वह सर्वत्र व्यप्त होनें से विष्णु ,सृष्टि का कर्ता होनें से कृष्ण ,ब्रह्माण्ड का आधार होनें से गोविन्द ,सर्वकालीन होनें से राम ,धर्म संस्थापक होनें से अल्लाह, ज्ञानप्रेरक होनें से खुदा एवं सबका पाल पोषक होनें से सब हो जाता है–143। इन दोनों कवियों के अनंसार वह सर्व व्यापक है –144।

इन कवियों नें अपनें साध्य एवं अराध्य –अव्यक्त ब्रह्म का जिन अनेंको रुपों में वर्णन किया है । उनमें से सत्य–145, ज्ञान–146, आनन्द–147, काल–148, वायु–149, मन, आकाश–150, पुरुष–151, पक्षी–152, अग्नि–153, वृक्ष–154, एवं सागर155, आदि रुप उन्होनें औपनिषदिक परंपरा से प्रायः ज्यों का त्यों ग्रहण किये हो । तेज शब्द आदि रुपों का वर्णन उपनिषदों मे भी किया गया है । किन्तु अन्य कवियों इस रुप को अन्य परंपराओं से भी जोड़ा है । अन्य परंपराओं के शून्य सहज एंव एकेश्वर आदि का समावेश स्वयं ब्रह्म में कर लिया हैं । शंकर भाष्य –156 , के अनुसार खट्टा मीठा आदि तृप्तिदायक और आनन्द प्रद पदार्थ लोक में रस के नाम से प्रसिद्ध है।। वह सुकृत भी आनन्द प्रद है , इसलिये वह निश्चयात्म रस ही है । ब्रह्म रस रुप है। किन्तु कबीर अखा एवं नानक नें उसके जिस रस रुप को की

सराहना की है वह आनन्द प्रद तो है किन्तु साथ साथ मादक भी है अहंता नाशक मुक्ति दायक भी है । कबीर नें उसका संबंध यौगिक साधना से जोड़ दिया है । अतः जिससे वह शंकर भाष्य का रस न रहकर ब्रह्मरन्ध्र से निस्तृत अमृत है । इसी को इन्होनें मदिरा ,रसायन, राम रसायन, या ब्रह्म रस आदि कहा है । इसको तैयार करनें की विधि हठ योगी साधना है –157 ।

उपनिषत्कारों नें ब्रह्म को स्वयं प्रकाश से प्रकाशित कहा है और चन्द्र, सूर्य ,अग्नि आदि को उसके प्रकाश से प्रकाशित कहकर स्वयं प्रकाश रुप में चित्रित किया है –158 । गीताकार भी उपरोक्त कथन की पुष्टि करते है–159 । कबीर अखा एवं नानक को यह भी स्वकार है कि वह सवयं के प्रकाश से प्रकाशित ज्योति –रुप है –160 । उन्होनें जिस शून्य से उसे दर्शनीय माना है उसका संबंध हठयोग का साधना से भी जुड़ जाता है –161 । इन कवियों नें ब्रह्म शब्द की स्थिति भी यही प्रतीत होती है । उपनिषदकारों नें ऊकारोपासना का विशद वर्णन करते हुये ओऽम अथवा प्रणव को अक्षर एवं ब्रह्म कहा है –162 यही उनका शब्द ब्रह्म है । इसी को पतंजली ब्रह्म का वाचक मानते हुये–163, यौगिक साधना में स्थान देते है । इसी को भर्तहरि शब्द ब्रह्म कहते हैं –164 । कबीर नानक एवं अखा नें भी प्रणव को सृष्टि स्वीकार किया है –165 ।

इन कवियों नें सहज को भी ब्रह्म का रुप कहा है यह सहज बौद्धों के सहजयान की देन है । जिसे नाथों एवं वैष्णवों के सहजिया पंथ आदि अस्तित्व के साथ जन्म लेता है वह सहज है । सहज सभी धर्मो के अस्तित्व का कारण है महा सुख के तुल्य धर्मो का स्वरुप औपनिषद आत्म तत्व या ब्रह्म का पर्याय प्रतीत होता है –166 । कबीर एवं अखा नें उस ब्रह्म के पर्याय के रुप में स्वीकार किया है–167, अखा के अनुसार कारण रुप में ही हरि का रुप है कार्य रुप में वही जीव है और सार स्वरुप यह सहज निश्चय चैतन्य परमेश्वर है –168 । यही सबका आश्रय स्थान है –16 9 । सत्य रुप सहज के ज्ञान से रहित सभी प्रकार का ज्ञान अपूर्ण है –170 ।कबीर के यहां राम, रहीम, केशव –करीम,

विसमिल विश्वंभर गोविन्द –गोरख ,अल्लाह, अलख, निरंजन आदि सभी उस कण–कण व्यापी के ही गुणनुसारी नाम रुप है –171। अखा की वैसी ही तो कोई उक्ति नही मिलती परंतु इनके विचारों में कोई अंतर नही है । नानक भी इसका समर्थन करते है। । इन कवियों नें विभिन्न स्रोतों के विचारों एवं शब्दों को अपनें विचारानुसार अर्थ प्रदान करके अपनें विचारों में संगति को बनाये रखनें का प्रयत्न किया है । जहां एक ओर उनके विचार भेद को कम करनें का प्रयत्न किया है वहां दूसरी ओर उन्हें अपनीं परिधि में लानें या अपनें रंग मे रंगनें का प्रयत्न किया भी है । अंतः उनकी दृष्टि 'सर्वग्राही ' होनें के साथ–साथ 'सर्वग्रासी' भी रही प्रतीत होती है । इन कवियों का आराध्य अजत्मा ,अद्वैत ब्रह्म है । अतः उन्होनें नाम रुपात्मक सभी ईश्वरों के प्रति अपनीं अश्रद्धा व्यक्त की है–172। किन्तु दूसरी ओर उनके 'भक्त हेतु 'या भक्त वत्सलता संबंधी कार्यो की प्रशंसा की है –173। और उन्हें ब्रह्म के ही कार्य माना है ।इस विरोधाभास का समाधान यही हो सकता है । कि जन्म–मरणाधीन ये नाम रुपात्मक ईश्वर ही ब्रह्म है । यह विचार उन्हें अस्वीकार है किन्त ये उससे अपृथक है। या उसके हैं ,यह स्वीकार्य है –174। ' प्रहलाद उबारियोअनेंक बार' उक्ति के आधार पर डॅा. मदन गोपाल गुप्त नें कबीर द्वारा 'अवतारवाद के सूक्ष्म तत्व' की स्वीकृत का जो निष्कर्ष निकाला है उसका आशय भी यही महसूस होता है । ब्रह्म एक ऐसी सत्ता है कि जों पक्षपात ,भेद'भाव , मत–मतांतर ,विधि–निषेध एवं वाद–विवाद विषयक सभी प्रकार के दैत भावों से परे सर्वातीत किन्तु सर्वमय है–175।

ब्रह्म निरुपण में पिंड में ही ब्रह्म की स्थिति है एवं पिण्ड ब्रह्म का ही अपर नाम आत्मा है । कबीर नानक एवं अखा नें उसे सत्य, नित्य चैतन्य ,अखंडित ,अनाम, अरुप एवं अजन्मा आदि उन सभी गुण धर्मो से युक्त माना गया है । जो ब्रह्म में है –176, ब्रह्म के तुल्य उन्होनें आत्मा को भी ज्योति –177, हंस, शब्द ,वाक्, प्राण, पवन, आनंद, पुरुष आदि नाम रुपों से अभिहित

किया है –178 कठ. उप. '(1/3/15/) में आत्मा को अशब्द , अस्पर्श ,अरुप, अव्यय, छन्दोग्य उप. (8/1/5/) मं धर्मा धर्म शून्य तथा अजर–अमर व शोक, भूख प्यास तथा संकल्प विकल्प से रहित कठ. (1/2/ 18) एवं गीता(2/23/24) में अछेद्य और अवलेद्य ,अशोन्य एवं अदाह्य आदि गुणों से युक्त और बृ. उ. (4/4/22) में अग्राह्य अशीर्य असंग, निरासक्त एवं अंबंधित आदि कहा गया है। आत्मा शरीरस्थ होते हुये भी शारीरिक कोई वस्तु नहीं है । एवं रात–दिन साथ–साथ रहते हुये भी वह अत्यंत दूर ,दुर्तिशेष अचिन्य एवं दुर्लभ है–179 । कबीर नानक अखा नें भी उसका साक्षात्कार हृदय में ही किया था । अतः इन कवियों नें साधक के लिये ब्रह्म को इसी स्थिति में यानी आत्म रुप में प्रत्यक्ष या प्रकट निकट एवं सुलभ माना है –180। उपनिषदों में भी इसी को साक्षत या अपरोक्ष ब्रह्म कहा गया है –181। कबीर अखा एवं नानक जी नें भी इस एक के ज्ञान के अभाव में शेष ज्ञान को व्यर्थ और इसका ज्ञान हो जानें की बात स्वीकार की है –182। –

जीवः:–देहात्मा भाव को प्राप्त होते ही जीव में अहंकार का प्रादुर्भाव होता है–183। जिसके कारण वह अपना पृथक अस्तित्व मानकर एक तो स्वयं कर्ता एवं भोक्ता मान लेता है –184। दूसरे स्वयं को अकेला निर्बल दीन ,असहाय एवं लघु अनुभव करता है –185। कबीर अखा एवं नानक नें जीव के लक्षण इस प्रकार मानें हैं । इन कवियों नें इसे दीपक की ज्योति के सदृश इसका आकार बताया है –186। इसे हम उसका अंगुष्ठाकार होना भी समझ सकते है। इसकी सूक्ष्मता को भी तीनों कवियों नें स्वीकार किया है –187। इन्होनें इसे तिल एवं परमाणु से भी अधिक सूक्ष्म बताया है –188। यह आदि अंत में असत्य किन्तु मध्य में सत्य है–189। आत्मा की भ्रमित अवस्था रुप है , कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं अर्थात भ्रामक है । मन, बुद्धि , चित्त एवं अहंकार के चतुष्टय के कारण उसमें जो चेतेना दिखाई देती है । वह उसकी स्वयं की नहीं वरन चैतन्य आत्मा

के प्रतिबिम्ब के कारण है अतः वह स्वयं जड़ है । उसका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है नही वह नित्य है । केवल स्वरुप विस्मृति की अवस्था मात्र है । अतः अज व मिथ्या होनें से बंध्यासुत सदृश है । इन कवियों नें जीव को इन्हीं की विशेषताओं से युक्त माना है ।

आत्मा विषयक निष्कर्ष

आत्मा विषयक निष्कर्ष निम्नांकित निकाल सकते हैं:—

1—आत्मा ब्रह्म का वह अंश है , जो प्रकृति या माया जनित 'नाम रुप ' के माध्यम से व्यक्त होता है । वह स्वयं एक हैं किन्तु उसके आश्रय अनेंक है।
2— माया वश होकर जब वह अपनें स्वरुप को भूल जात है देह को ही अपना स्वरुप मानने लगता है तब वही जीव संज्ञा से अभिहित होता है ।
3— प्रथम अनाम, अरुप ,सत्य ,नित्य, आनन्दमय, अजन्मा ,एक, अजर, अमर है तो दूसरा नाम —रुप असत्य, अनित्य, दुःखी , जन्म, जश एवं मृत्यु के आधीन है। 4— आत्मा आराध्य है तो जीव आराधक है ।

इससे स्पष्ट है कि आत्मा , सत्य, नित्य, निर्विकार, आनन्दमय एंव मुक्त है एवं शरीर जड़ है । अतः इन दोनों के विषय में बंधन व मोक्ष का प्रश्न ही नहीं उठता —190। चैतन्य एवं जड़ के मिथुन से जिस अविद्या का सर्जन होता है उसके कारण आत्मा अपनें स्वरुप को विस्तृत होकर जिस देहात्म भाव या जीव का प्राप्त होता है उसी से बंधन व मोक्ष का संबंघ है । देहात्म भाव की प्राप्ति बंधन व उसकी निवृत्ति ही मोक्ष है । इन कवियों नें जीव की व्यावहारिक सत्ता स्वीकार की है परमार्थिक नहीं । जीव से संबंधित बंधन — मोक्ष—191, जन्म—मरण—192, सुख—दुख—193, पाप एवं पुण्य—194, इत्यादि आत्म दृष्टि से तो भ्रामक ही है । किन्तु देहात्म दृष्टि या जीव दृष्टि से अस्वीकार्य नहीं हैं—195। यदि जीव सावधान हो तो वह माया के बंधन से बच सकता है —196।

तुलनात्मक —निष्कर्ष —

कबीर की रचनाओं में दार्शनिक —सिद्धांतो का निरुपण यत्र—तत्र

प्रख्यात हुआ है । जिसमें न तो किसी शास्त्रीय पद्धति को अपनाया गया है और न उनकी कम बद्धता पर ही कोई विशेष ध्यान दिया गया है यद्यपि उनकी अन्स रचनाओं की अपेक्षा उनकी रमैणियों में सैद्धांतिक निरुपण सविशेष मात्रा में व्यवस्थित हुआ है । जबकि अखा की रचनाओं में एक तो सैद्धांतिक निरुपण सविशेष मात्रा में हुआ है दूसरे उन्होनें विशेष रुप से गुरु शिष्य संवाद, चित्त –विचार संवाद प्रतीकरण एवं ब्रह्मलीला एवं आशिक रुप से अखे गीता एवं अनुभव बिन्दु में अपनें विचारों को कम बद्ध या व्यवस्थित रुप में रखनें का प्रयत्न किया है । यद्यपि इनमें से किसी भी एक रचना में उनके समस्त विचारों का समावेश नहीं हो पाया है । छप्पा ,जकड़ी,भजन, साखी, पद एवं संत प्रिया आदि रचनाओं में सिद्धांत निरुपण की स्थिति कबीर की रचनाओं जैसी है । यद्यपि इन संतो के दार्शनिक विचारों पर अद्वैत वेदान्त का प्रभाव मुख्य है । स्वयं के विचारों को प्रमाण पुष्ट बनानें की जो प्रवृत्ति अखा में देखी जाती है कबीर उससे मुक्त हैं ।

पारलौकिक सत्ता के अस्तित्व की सिद्धि और उसके स्वरुप के निर्णय के लिये दोनों कार्यों से कारण या प्रत्यक्ष के प्रमाण से परोक्ष के अनुमान की ऐसी तार्किक पद्धति स्वीकार की है कि जो निश्चय ही सांप्रदायिक , अंध श्रद्धा एवं तज्जन्य संकीर्णता से सर्वदा मुक्त है।

'पुहुप बास थै पातला ऐसा तत अनूप ,
फूलनि में जैसे रहत बांस यूं ।
घट–घट है गोविन्द निवास ,
एवं पावक रहै जैसे काष्ट निवासा।।

आदि उक्तियों में यद्यपि कबीर नें ब्रह्म के तात्विक रुप का ही प्रतिपादन किया है और यह भी स्पष्ट किया है कि विष्णु ,कृष्ण गोविन्द ,राम अल्लाह, करीम, गोरख, एवं महादेव आदि उसके गुणनुसारी नाम मात्र हैं , फिर भी भक्ति भाव से उन्होनें जिस ब्रह्म को स्वीकार किया है उसके व्यक्तिगत

स्वरुप को भुलाया नहीं जा सकता है । अखा की भक्ति एवं विरह पारक रचनायें ' विशेष रुप से भजन, जकड़ी अवं कतिपय अनय फुटकल रचनाओं में यद्यपि ब्रह्म के व्यक्तिगत रुप की स्पष्ट स्वीकृति है फिर भी उनकी अन्य रचनाओं में उसके तत्विक रुप का ही निरुपण विशेष रुप से होता है ।

इन कवियों का ब्रह्म कियाशील या कतृत्व से युक्त है फिर भी कबीर नें अपेक्षकृत रुप में उसके कियाशील होनें का तो महत्व दिया है वह उसके दृष्टा व अकर्तापन को नहीं । जबकि अखा नें उसके दृष्टा व अकर्तापन को जो महत्व दिया है वह कर्ता पन को नहीं ।

'ब्रह्मा एक जिनि सृष्टि उपाई ,नाम कुलाल धराया । आपै कर्ता भये कुलाला' जैसी उक्तियों में कबीर नें ब्रह्म व सृष्टि के मध्य किसी नाम रुपात्मक ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार किया है किन्तु अखा नें ईश्वर के गुण—धर्मो व उसके कार्यो का जो सैद्धांतिक विशद विवरण दिया है ,वह कबीर की की रचनाओं में नहीं है ।

आत्मा को अखंडित ,सत्य, नित्य, निर्लिप्त ,निर्विकार, आनन्दमय, और उसकी स्वरुप विस्मृत अवस्था अथवा जीव को तात्विक या आत्म दृष्टि से असत्य किन्तु व्यवहारिक या देह दृष्टि से अनेंक विकार ग्रस्त , दुखमय ,कर्ता —भोक्ता कर्माधीन जन्म—मरण आधीन एवं बंधन ग्रस्त दोनों नें माना । फिर भी कबीर की अपेक्षा अखा की रचनाओं में जीव की उत्पत्ति या स्वरुप विस्मृत और उसके लक्षणों का भी निरुपण कमबद्ध व विस्तृत देखा जा सकता है । इस विषय में उनकी मान्यताओं में विचारगत नहीं किन्तु विस्तारगत अन्तर अवश्यहै ।

माया के विद्या व अविद्या दो रुपों ,उसके सत्य ,अनात्म, जननी , भोग्या बंधक, आदि लक्षणों ,जीव के लिये त्याज्य व निन्दनीय किन्तु संतो की सेविका होने और ब्रह्माधीन होनें आदि को इन कवियों नें स्वीकार किया है । कबीर नें इस दृष्टि से ईश्वर प्रप्ति में सहायक मानकर उसकी प्रशंसा की है जब कि

अखा की रचनाओं में ऐसी कोई प्रशंसा दिखाई नहीं देती । इन संतों के विचार आचार्यों के दुर्वोध तर्क जाल में सर्वथा मुक्त ,व्यावहारिक स्तर के है। स्पष्ट रुप से कहा जाये तो जीवात्मा में इह लोक और परलोक में सुख प्राप्ति की आसक्ति के पोषक समस्त ज्ञान साधना और कर्मो तथा अनाम व अनित्य सृष्टि को उन्होनें माया कहा है ।

सृष्टि रचना दोनों नें व नानक जा नें भी ऊकार शब्द से मानी है । और दोनों का तत्व निरुपण साख्य –दर्शन से प्रभावित है । कबीर नें सृष्टि रचना के कम का और उसके तत्वों के पारस्परिक 'कार्य' –कारण संबंधों' का ऐसा विस्तृत व पंडित्य पूर्ण विवरण प्रस्तुत नहीं किया जैसा कि अखा कृत ' पंचीकरण में ' उपलब्ध होता है । इस आधार पर यह कहना निरर्थक होगा कि उन्हें इस विषय का ज्ञान नहीं था । जबकि अखा नें अपनें एतद्विषयक विचारों में कम, विस्तार एवं निवारण भाषा को स्थान देकर उन्हें सब के लिये सुगम बना दिया है । अतः यहां भी इन कवियों का मुख्य अंतर भाषा –शैली एवं विस्तार संबंधी है ।

यद्यपि इन कवियों की विचारधारा में स्वनुभूत तथ्यों का उद्घटन हुआ है और उस पर उनकी मौलिकता की अमिट छाप है । इस स्वनुभूति का यह अर्थ कतई नहीं है कि परंपरा विचिछन्न, व्यक्गित विचार व मौलिकता का अर्थ किसी प्रकार की नवीनता हो । इसकी सवानुभूति की फल श्रुति अपनें विचारों में निरपेक्षता बौद्धिक –संगति एवं व्यवहारिकता लानें में तो मौलिकता सार्थक परस्पर विरोधी या असंगत विचारों में समन्व स्थापित कर उन्हें युगानुकूल विकासोंन्मुखी रुप प्रदान करने में है।

दोनों कवियों के दार्शनिक विचार मुख्यतः वेदान्त–उपनिषद एवं गीता दिसांख्य ,योग एवं नाथपंथी विचारों से प्रभावित है परंतु वेदान्ती परंपरा का उनका ज्ञान उन आचार्यों की कोटि का नहीं प्रत्युत आचार्यों के प्रवचनों व साधू समाज की निर्मल वाणी से निस्कृत ,श्रुति परंपरा से गृहित ज्ञान है । तो वेदान्त

जैसी अत्यंत विकसित चिन्तन धारा से संबंधित होनें के कारण एक ओर विद्वानों के अध्ययन का विषय है जो दूसरी ओर तर्क–जाल की उलझनें से अपेक्षकृत रुप से मुक्त होनें के कारण जन–साधारण के लिये भी बोधाम्य व उपयोगी है ।

–::गुरु नानक देव के दार्शनिक सिद्धांत::–

परमात्मा–ब्रह्म–

गुरु नानक देव नें अनुभूति एवं श्रद्धा के बल पर अपनें मूल मंत्र अथवा बीज मंत्र में परमात्मा स्वरुप की इस प्रकार व्याख्या की है ।

1– ओंकोर सतिनाम करता पुरुखु, निरभउ निरवैर अकाल मूरति अजनी सैभं गुरु प्रसादि।

मोहन सिंह जी के अनुसार 'वह एक है । शब्द अथवा वाणी है और इसी के द्वारा सृष्टि रचता है । वही सत्य नाम है । उसके अस्तित्व का वाचक केवल नाम है और वही सत्य और शेष जितनें नाम है उसके गुणों के वाचक है । उसके प्रत्क्ष गुण ये हैं –वह कर्तार है पुरियों का निर्माण करके उसके बीच निवास करनें वाला है ।

–साधना मार्ग–

आमुख::– दार्शनिक विचारधारा का मुख्य प्रयोजन मुमुक्षु को उसके आध्यात्मिक इष्ट को प्रप्त करनें के लिये किसी अनुभवी व्यक्ति अथवा गुरु के निर्देश में अथवा आत्म प्रेरणा से भी , विधिवत् किये गये सतत प्रयासों को ही साधना कहते है ।

सद्‌गुरु संपट खोल दिखावै निगुरा होय तो कहां बतावै।।

"क. ग्र. पद 325"

सद्‌गुरु मिलै पाइये नहीं तौ जनम अवयारथ जाइ रे ।।
सद्गुरु बिना बहु काचा मरै आप उद्योत थया बिना ।।
और नहीं उपाय सहाय बिना गुरु ज्ञानी । –कुण्डलिया–

किन्तु गुरु विषयक अपनी अवधारणा में वे अंध श्रद्धा पक्षधर नही है इसलिये उनका आदेश है कि शिष्यों को मुंडनें का धन्धा करनें वालों से सावधान रहकर मुमुक्षु को ऐसे गुरु की शोध करनीं चाहिये कि जो ज्ञानी ,निस्पृहि ,निर्लोभी , अनासक्त, करनें वाला–197, और प्रभू प्राप्ति करा सकने में समर्थ हो ।

सद्गुरु साचा सो अखा जाकु साइया सेति मिलाप।
सेहि मिलावै शिष्य कुं जो पाया होये आप।।–198

स्वयं के मार्ग दर्शन द्वारा ब्रह्म का साक्षत्कार –199,करा कर उसे आप्त काम या पूर्ण काम बना देता है । उसके त्रिताप्त शांत हो जाते है–200। मोक्ष या ब्रह्म स्वरुप की प्राप्ति उसी से हो जाती है –201। लक्ष्य करनें की बात यह होती है कि जिस आत्म– तत्व का साक्षात्कार शिष्य करना चाहता है वह कोइ ऐसी वस्तु नही है जिसे गुरु कीह बाहर से लाकर उसके सम्मुख प्रस्तुत कर दे । उसकी प्राप्ति शिष्य को स्वप्रयत्न से अपनें अंदर ही करनी होती है गुरु तो केवल मार्ग दर्शन करता है –202। शिष्य का अधिकारी होना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि गुरु का समर्थ होना । यदि उसमें लक्ष्य की प्राप्ति के लिये आवश्यक उत्साह एवं गुरु के उपदेश को यथातयत् रुप से ग्रहण करनें तथा तदनुसार आचरण करने की क्षमता का अभाव है । तो उसके लिये गुरु का अमृतोपम् उपदेश भी सूखे डंड या ऊसर भूमि पर हुई वर्षा से अधिक उपयोगी न हो सकेगा–203। अखा के अनुसार अधिकारी शिष्य को ऐसा होना चाहिये ।

भाओ भरोसे भक्ति भल आदर गुण गंभीर ।
ऐसा शिष्य नीपजे अखा सुध सुभाव मति धीर।।

अतः दोनों कवियों के अनुसार शिष्य को गुरु का कृपा पात्र बननें के लिये उसकी श्रद्धा से युक्त वैसी ही सेवा करनीं चाहिये जैसी कि स्वयं परमात्मा

की की जाती है

सति राम सतगुरु की सेवा पूजहिं राम निरंजन देवा।

ज्यम सौवर्ण केरी मोहोर मांहे अन्य मुद्रा छे अति घणी।।

"क. ग्र. प. 345"

त्यम गुरु भंजनमां सर्व आवे जो मन भले गुरु चणर्प भर्णी ।।

"अखे गीता क. 1"

उपनिषदों में अमेददर्शीय एवं कुशल आचार्य के बिना आत्म विद्या का ज्ञान व सफलता असंभव मानी गयी । यहां तक कि देवताओं व अग्नियों द्वारा उपदिष्ट सत्य काम उपकोसल जब तक अपूर्ण ही मानें गये जब तक कि वे अपनें गुरुओं द्वारा उपदिष्ट न हुये अतः गुरु ईश्वर की जैसी भक्ति का अधिकारी बना ।

प्रायः सभी समाधानों में गुरु को साक्षात् पर ब्रह्म स्वीकार किया गया है–204। बौद्ध, सिद्ध ,नाथपंथी, योगी, आलवर, एवं वारकरी भक्तों में भी गुरु का सर्वोच्च स्थान सुरक्षित रहा । इससे यह प्रकट है कि कबीर एवं अखा की गुरु विषयक अवधारणा भारतीय साधनात्मक परंपरा की देन है किन्तु उनकी उक्तियों में परंपरागत पालन के साथ–साथ स्वनुभूति की अभिव्यक्ति पाई जाती है । योग साधना को विद्वानों नें आत्मा पामात्मा के संयोग या मिलन का द्योतक माना है । योग से अभिप्राय उस किया के योग से जिनके अभ्यास द्वारा चित्त की बर्हिमुखी वृत्तियों को निरुद्ध करके अंर्तमुखी बनाकर आत्म तत्व का साक्षात्कार किया जाता है । पतंजलि के योग –सूत्रों में चित्त वृत्त निरोधे को ही योग कहा गया है ।

— कबीर एवं अखा ,नानक की साधनाओं में योग —

इन कवियों नें योग–साधना के महत्व का प्रतिपादन किया है । कबीर के अनुसार योग –युक्ति को जानकर आत्म – शोध करने वाले साधक को ही

मोक्ष प्राप्ति सांख्य से परे हैं । अखा के अनुसार योग–युक्ति को जाने बिना ही मुक्ति चाहनें वाला बंधन को प्राप्त होता है –206। योग ही श्रेष्ठ क्रिया है अन्य क्रियायें व्यर्थ है । अतः निश्चित है कि उपरोक्त कवियों की साधना में योग का समसवेश था ।

–तुलनात्मक निष्कर्ष –

यद्यपि अलोच्य दोनों कवियों नें मुख्य साधना के रुप में भक्ति को उसके सहायक साधन या अंग के रुप में ज्ञान व योग को अपनाया है किन्तु कबीर का जितना झुकाव भक्ति और योग की ओर है उतना ज्ञान की ओर नहीं तो अखा का जितना झुकाव आत्म–चिंतन व भक्ति की ओर है उतना योग की ओर नहीं । आराध्य के स्वरुप ,गुरु के महत्व एवं अनुष्ठेय –कर्मो के विरोध आदि के विषय में उनकी मान्यताओं में कोई अंतर नहीं है । ये कवि सर्वभूतान्तर्यामी ,निर्गुण , निराकार के उपासक और उपनिषद व शंकरा द्वैत से प्रमावित है भक्ति के आवेश में कबीर–द्वैत–अद्वैत एवं सगुण –निर्गुण के विषय में इतनें चुस्त नहीं है। जितनें कि अखा है। परिणाम स्वरुप जहां एक ओर कबीर में दीनता, आत्म–निवेदन संबंधी उक्तियों की भरमार है वहां अखा की रचनाओं में ऐसी उक्तियां उदाहरण प्रस्तुत कर सकनें की मात्रा ही सीमित हैं। कबीर, नानक की भक्ति –परक उक्तियां जितनी भावुकता पूर्ण एवं प्रभा विष्णु हैं ,उतनी अखा की नहीं है । कबीर भक्त पहले ज्ञानी बाद में ,अखा ज्ञानी पहले भक्त बाद में । कबीर की भक्ति परक उक्तियों में अनुभूति ,एवं विनय मुख्य है तो अखा की भक्ति संबंधी उक्तियों में सैद्धांतिक निरुपण तथा खण्डन – मंण्डन।

वत्स एवं साख्य भाव दोनों की भक्ति में गौड़ या नहिवत् है । तो दास्य भाव को जो महत्व कबीर नें दिया है वह अखा ने नहीं । शायद इसी लिये कि सेवक व सेव्य या लघु व विभु का द्वैत एवं अंतर उसके ऐकमेवादितीयम् में कुछ असंगत या प्रतिकूल से जचते है। किन्तु दामपत्य – भाव को दोनों समान रुप

से अपनाया है । दोनों की भक्ति साधना में स्वीकृति माधुर्य –भाव का विचार पक्ष सवर्था भरतीय परंपरा के अनुकूल है किन्तु उसके अभिव्यक्ति पक्ष पर सूफियों का प्रभाव है । माधुर्य भाव में संयोग व वियोग का वर्णन इन कवियों नें किया है । कबीर का वियोग वर्णन जितना विस्तृत ,समृद्ध, वैविध्य पूर्ण एवं अनुभूतिपरक है अखा का नहीं इन्होनें तो अधिक तर विरह के महत्व एवं आदर्श रुप का प्रतिपादन ही किया है । जो विरह वर्णन उनका मिला भी है वह भी उन्होनें तटस्थ रहकर किया है । दूसरी ओर कबीर नें उसे आत्म कथन शैली अपना कर उसे अधिक स्वाभाविक एवं प्रभावशाली बना दिया ।

संयोग वर्णन इन कवियों नें आत्म –कथन शैली में किया है । इसका जो विस्तार एवं भाव वैविध्य अखा की रचनाओं में उपलब्ध होता है वह कबीर की रचनाओं में नहीं । मर्यादाओं का पालन दोनों नें किया है और प्रम भक्ति के क्षेत्र में लोक की अपेक्षा दोनों को स्वीकृत है किन्तु संयोग वर्णन में अखा नें अपेक्षकृत अधिक छूट ली है । योग–साधना का जो विषद निरुपण कबीर द्वारा किया गया है वह अखा में नहीं है । उन्होंनें जहां–तहांएतद्विषयक अनुभूतियों का ही उल्लेख किया है ।

अध्याय–5

1, कबीर ग्रन्थावली (क . स.) सा. –1 , पृ. 1
2, वही , पृ. 233
3, वही , पृ . 275
4, वही , पदः–325 , पृ. , 198
5, वही , सा. –3 , पृ. , 83
6, नानकवाणी , रागु आसा , महला –1 , छंत–1, पृ. , 315
7, वही, मारू सोहले छंत –1

8, वही , पृ. 302
9, महाराज हरिदास की वाणी , दोहा –33 , पृ. , 6
10, दादू –ग्रन्थावली , साखी –63, पृ., 7
11, वही , साखी –133, पृ. , 14
12, वही , साखी ,–11, पृ. , 2
13, वही , पद –74 , पृ. ,336
14 , संत नामदेव की हिन्दी पदावली , पद –2119, पृ. , 103
15, कबीर ग्रन्थावली , साखी –6 , पृ. , 1
16, वही , साखी –11–2 , पृ. , 2
17, वही , साखी –2 ,पृ. ,1
18, वही , साखी , –6 –7 पृ. , 1
19, वही , साखी
20, वही , पद –386
21, नामदेव की वाणी , पद–16 ,पृ. ,7
22, वही , पद –76 , पृ. ,34
23, नानक वाणी , रागु सोरठि , पृ. 12
24, वही , पद –28 , पृ. , 268
25, वही , रागु गउड़ी ,पद–8 , पृ. , 227
26, वही , रागु मारू –6 , पृ. , 278
27 , दादू ग्रन्थावली , साखी –9, पृ. , 2
28 , वही , साखी , –13 ,16
29 , दादू ग्रन्थावली , राम गउड़ी , पृ. , 65
30 , कबीर ग्रन्थावली , पद –259 , पृ. , 176
31, वही , पद , 120, पृ. , 126
32, रैदास जी की वानी(बे. प्रे .) पद –80, पृ.40

33, श्री महराजहरि दास की वानी , श्रीगुरुदेव को अंग , चान्द्रायन–1 , पृ. , 339
34, दादू दयाल की वाणी , पद,–44,पृ. 396,
35. वही, साखी – 29 , पृ. ,4
36 , वही , पद –9 , पृ. 441
37, संत नाम देव की हिन्दी पदावली , पद –35 , पृ. , 15
38 , वही , पद ,–24, पृ. , 22
39, कबीर ग्रन्थावली , पद –155
40 , वही , पद, –30 , पृ. , 273
41, वही , पद –390 , पृ. ,218
42, दादू दयाल ग्रन्थावली, पद ,–33, पृ. , 479
43, कबीर ग्रन्थावली , पद –293 ,पृ. 187
44, ह. वा. , साखी –6 , पृ. 7
45, दादू ग्रन्थावली , पद –30 , पृ. 410
46 , म.वा. , पद–1 , पृ. ,1
47, वही , शब्द –2 , पृ. 7
48, दादू ग्रन्थावली , साखी –75 , पृ. , 8
49, कबीर ग्रन्थावली , पद –13 , पृ. , 92
50 , नानक पदावली , पद –180 , पृ. ,87
51, ह. बा., साखी –4 , पृ. .356
52, ' विवेक सार' , पंक्ति –5 –12, पृ. 2
53, 'भक्ति सागर ' कि. प्रें . , पृ. , 79 , 323 इत्यादि ।
54, ' बानी' , पृ. , 52
55, वही , पृ. , 148
56, वही , पृ. , 158
57, दादू ग्रन्थावली , पद–2 , पृ. 1

58 , वही . साखी –4 , पृ. 2
59 , सुन्दर ग्रन्थावली , प्रथम खण्ड ' गुरू संप्रदाय , ' चौपाई 8 –35 , पृ. 197–202
60, वही , भाग –2 , पृ. , 416
61, ' रत्नसागर' , पृ. , 41
62, वही , पृ. , 1
63, घटरामायन , भाग –1 , पृ. 5
64, वही , चौपाई–52, 55 , दोहा,–4 , पृ. , 15–16
65, वही , पृ. 4
66, वही , पृ. ,6
67, उनमुनी राम , पृ. , 5
68 , कबीर ग्रन्थावली , पद –1
69 , वही , पद–1–4, क, ख , ग, घ
70 , वही . पद –3.
71. वही , सतगुरू महिमा को अंग , साखी –1 ,
72, वही , पृ. , 16
73, वही , पृ. , 5
74, वही , पृ. 2–9
75, वही , पृ. , 33
76, वही , पृ. , 34
77, संतकाव्य , पृ. , 154
78, वही , पृ. , 155
79 , वही , पृ. , 477
80 , वही , पृ. 48
81, कबीर ग्रन्थावली , साखी –1 , पृ. , 28
82, हि. सा. सू. प्रे. साहित्य , परशु राम चतुर्वेदी , पृ. 259

83, वही , पद–223

84, वही , पृ. , 125

85, वही , पृ. , 157

86, कबीर ग्रन्थावली , पद –219, क– परचा को अंग , साखी –27 , पृ. , 11

ख – वही , पद –279 पृ. , 136

ग– अ. र. पूरब जनम अंग , साखी , पृ. ,180

घ – अ. र. झ. पद –29 ,पृ. 62

87 , कबीर ग्रन्थावली , पद –366 , पृ. ,158, छपपा–235, पद –103, छप्प I –30

88, वही , मधिको अंग , साखी –6 , पृ. 42, अ.र. असत को अंग , साखी –9 , पृ., 313 छपपा–348 एवं अ. वा. ,पद–38 इत्यादि

89, देखें ऋग्वेद , 10/129

90, वही , 10/72

91, वही , 1/164/4

92, वही, 10/129

93, वही,

94, देखें कठ , 2/2/4

95, देखें तैत्ति :3/1

96 , तज्जलानिति शान्त उपासीत, । छा. 3/14/1

97 , कबीर ग्रन्थावली , पद –48 , पृ. , 81, अ. र., अथ ज्ञान अंग , साखी–14

98, देखें, वही , पद–49 , 375 एवं रमैणी, पृ. , 175 तथा अ. व. पद–99एवं 145

99, वही , पद –336 , पृ. ,151/ वही , पद , 337 , पृ. , 151/ आवरी ,–1, छपपा –119, देखें –छ. –571, 577

100, ऋक, 10/90 और देखें गीता –11/16

101, मुण्डक , 2/1/4, और श्वेता , 3/3, 3/14 एवं 3/15/1–2 आदि

102, 'दु:ख श्वेता' , 4/3

103, कबीर ग्रन्थावली , पद–340 , पृ. , 152

104, कबीर की विचार धारा , डॉ. त्रिगुणायत ,पृ.182 , 'कबीरदर्शन , डॉ. रामजी लाल सहायक , पृ. , 154

105 , अ. र. नुगरा अंग , छपपा–516, साखी –5 , पृ. , 349

106 , बहु पग ने बहु पाण , बहु नेत्र ने नासा बहु ।। सोरठा –221

107 , देखें , अ. वा. पद ,–61, एवं छपपा–353 एवं अ. अ.ब. गुज. भजन–16, पृ. , 36–37

108 , कबीर ग्रन्थावली , पद –57 , पृ. , 82; कबीर ग्रन्थावली , पद–184 , पृ. , 112; ब्रह्मलीला चो. –2; गु. शि. सं. 3/7

109, पंचीकरण , 82–84

110 , ब्र. सू. 3/2/16 , 3/2/28 एवं 1/1/12 का शंकर –भाष्य।

111, कबीर ग्रन्थावली , पद –268, , पृ. 134

112, वही , पीव पिछावण को अंग , साखी –4 , ; अ. र. नुगरा अंग , साखी –5

113, वही , रमैणी , पृ. 181, छपपा – 119 , 367, संतप्रिया काव्य , पृ. , 127

114 , वही , पृ. , 183एवं पद–6 , जर्णा को अंग –3 आ . वा. पद –30 –34

115, वही , परचा को अंग , साखी –17;अ. र. अदबद अंग , साखी –3

116 , वही , पद –6 , छप्पा –55

117, केन . उप . 1/2–7

118, तैत्ति. ,2/4/1

119 , कबीर ग्रन्थावली , पद–219 व रमैणी , पृ. 184–85 तथा अखे गीता क. 17

120 , वही , पद –220 , अखे गीता क. 17एवं गु. शि. सं. 4/7

121, वही , पद –159 , संतप्रिया क. –78, अ. र. वित्रेक वेत्ताअंग , साखी –8

122, वही , रमैणी , पृ. 177 ,/छप्पा –504

123, वही , पृ. 183; संतप्रिया क. –24, कवित्त –28, छपपा–425 , 407

124, वही , पृ. 171; अ.र. भजन –32, पृ. 136

125, वही , पद –331, पृ. , 150 ; अ.व. पद –74

126 , वही , पद –45 , ; सोरठा –122

127 , वही , मन कौ अंग , साखी –10 , पृ. , 22 ;छप्पा–439

128 , पद –293 , 44; अ.र. निष्टज्ञांन अंग ,साखी –29, पृ. ,197

129 , वही , पद –157 , अविगत पुरिष वही रमैणी , पृ. 169 छपपा–47

130 , वही, पद –328

131, वही , पद –155, 328 ;अ. वा. पद –73

132, वही , पद–263, सा .सा . अंग , साखी –19 , पृ. 41;अखे गीता क. , 25/3

133, वही , पद –150, पृ. , 102;अ. व. , पद –100

134, वही , पद–38 , पृ.78;सोरठा–124

135 , 5 के संदर्भ आगे दिए गये हैं ।

136 , कबीर ग्रन्थावली , पद –215 , पृ. 120 ;वही , पद –26 , पृ. , 75

137 , छप्पा–26

138, विरही अंग, साखी –5 , ;अ.र. , पृ. 198

139 , संतप्रिया, क. –121;अ.र. , पृ. 166

140 , कुण्डलिया –19, अ.र.पृ. , 7

141, कबीर ग्रन्थावली , पद–327 पृ. , 149;संतप्रिया :क.–8

142, वही , रमैणी , पृ. 183 ; संतप्रिया रमैणी , पृ. 181;अ.र.चित्त विचार को अंग , साखी –16 , पृ. 332

143, वही , पद –327 , पृ. 149

144, वही , रमैणी , पृ. , 179 ;अ.र. अधम अंग, साखी –1 , पृ. , 212

145, छा. उ. ,8/3/4 और 6/8 /7

146, तैत्ति , 2/1/1'ऐति. 3/1/3' बृ. उ. , 3/9/7

147, वही. 3/6/1;बृ. उ , 4/3/33

148, कठ. 2/3/2;तैत्ति , 2/7/1

149 , तैत्ति , 1/1/1

150 , छा . प, 3/18/1

151, बृ/उ. ,2/5/18 म. भ. गा. पर्व –232/11

152, बृ. उ. , 2/5/18,' श्वेता '6/15'

153, श्वेता , 1/14

154, कठ. 2/3/1

155, मुण्डक, 3/2/8;बृ. उ. 2/4/11

156, रसो वैं. स."तैत्ति.2/7/1"

157, कबीर ग्रन्थावली , पद–69से 75, 119 –120 , 130, 131,148, 155,173;अ.वा.तथा म. प.पद –79 , 95, 104,–105, 51–52

158 , वृ. उ. 4/3/6;श्वेता '6/14 एवं मुण्डक 2/2/10

159 , गीता 15/12

160 , कबीर ग्रन्थावली , पद –151, पृ. 103 ;वही ,परचा को अंग , साखी –1 , पृ. 9; अखे गीता क. 25

161, वही , पद –328 , पृ. , 149 ;अखा नी वाणी, –पद–53

162, माण्डूग्य उपनिषद , आगम प्रकरण एवं छा. उ. 1/1/1–5

163, तैत्ति . 1/8/1; कठ. 1/2/16

164, पा. यो. सू. 1/25

165, वाक्यपदीप , 1/1, हि. स. द.संग्रह , पृ. 591

166, कबीर ग्रन्थावली , रमैणी , पृ. 185; अखा ना छप्पा–606एव पंचीकरण चौ. –90–96

167, डॉ.शशीभूषण दास गुप्ता , ओव्यक्योर रिलीजियस कल्टस (ई. 1962) पृ. 78

168 , छप्पा–138

169, सोरठा –226

170 , अ.वा. पद–39

171, कबीर ग्रन्थावली ,पद –58 , पृ 83; वही पद–330 , पृ. 150 ;क. ग्र. , पद–198, पृ. 116 ; क.ग्र. , पद –327 , पृ. 149

172, वही , पद –336 एवं रमैणी , पृ. 184–85 तथा छप्पा –469

173, वही , पद–37 ; छं 710

174, वही , पद–384, छप्पा –716, 739 ;व , अ. वा. पद–130

175 , वही , पद–181, ;छंद –469, , ; अ.र. रामरानिया अंक , साखी –16

176 , वही , पद–180 , पृ. 111, पद–157 , 62, 55,170 ; अखे गीता क. –17

177, वही , विचार को अंग , साखी –4 , पद –99, 32, 328, 92,300, 157 ; अक्षयरस : भजन –12, धुआ सा , पृ. 11, ;अ.व. पद.745,36, सोरठा–188

178, वही , हैरान को अंग , साखी –2 , पृ. ,14 ;वही , रमैणी , पृ. , 185;छप्पा–59; अखेगीता क.17

179 , वही , पद–384 एवं अ.र. आवेस अंग साखी –2, पृ. 276

180 , क.ग.भ्रमविधौसण अंग,सा.11 पृ.35; क.ग्र. पद–183 ,पृ.113; छप्पा–91;सोरठा–40,अ.र. प्रत्यक्ष अंग, सा. –3 पृ. 183

181. बृ.उ.3/4/1

182. क.ग्र. नि. पतिव्रता को अंग ,सा.–8 पृ.15, छपपा–530;अ.र. गेब अंग ,सा.–1 पृ.365

183. वही,पद–260,पृ.132 ;अ.र. झू.–24

184. वही, चाणक कौ अंग, सा.–21,पृ.29;अ.र.समदृष्टि अंग ,सा.–22 पृ.208

185. वही ,रमैणी,पृ. 173; अ.र.अधम अंग ,सा.–6 पृ.212

186. वही ,काल को अंग ,सा.–58; अ.वा.पद–17

187. वही,पी.पि.कौ अंग,सा.–4पृ.47; अ.वा.पृ.98

188. वही,परचा को अंग,सा.–42,पृ.12; अ.वा.,पद –93

189. वही, पद– 157 पृ.104; क.ग्र. काल कौ अंग,सा.–23, पृ . 59 ; ब्रह्म लीला चो.–4; वही , चो.– 6; अ.व.पद 109; क.ग्र.पद– 158; छपपा–653,पृ.105

190. छप्पा– 68 देखें छ.–630

191. क.ग्र.,पद– 52,पृ.81–82; छ.–99

192. वही,उपदेश कौ अंग , सा.–4,पृ. 44 ; अ.र.धुआ सा पृ.10

193. वही ,पद–121,पृ.96; अ.र.देह दरसी को अंग,सा.–8,20,पृ.280–81

194. वही,पद–263,पृ.133; पद –283;अ.वा.,पद–18

195. छ.223 ,देखे अ.र.संस परिहार अंग , सा.–7 , पृ.188

196. क.ग्र.,माया को अंग,सा.–2,पृ.25; छ.–749,देखें छपपा 684

197. द्रष्टव्य– क.ग्र.गुरुदेव कौ अंग,सा.–33,पद–108;अ.र.,साखी–3,पृ.117; साखी–23,पृ. 277, सा.–4,7 , पृ.269 तथा छपपा–448

198. अ.र.निष्ट ज्ञान कौ अंग,सा.–17,पृ.196

199. द्रष्टव्य –क.ग्र.,पद–300,परचा कौ अंग,सा.–9,छप्पा –446; अखेगीता,पद –2

200. वही,रमैणी, पृ.177–78;अ.र.,साखी–9, पृ. 269;सा.7, पृ. 241

201. द्रष्टव्य –वही,पद– 348,गुरुदेव कौ अंग, सा.–2; अ.र.साखी –24,पृ. 243

202. देखें वहीं ,पद 143,परचा कौ अंग ,सा.–9,पृ.10 तथा छपपा 414,588; अखेगीता क.23 एवं 32

203. देखें वही गुरुदेव कौ अंग, सा.– 21–24 व " निगुणा कौ अंग ," सा.–1,2 तथा अ.र. कुमति कौ अंग,सा.–7,पृ.184

204. विस्तार के लिए द्रष्टव्य– मध्यकालीन निर्गुण भक्ति साधना,डॉ.हरिशंकर शर्मा,पृ. 70–80 एवं परशुराम चतुर्वेदी , संत साहित्य के प्रेरणा स्त्रोत ,पृ.109–122

205. देखें क.ग्र., पद–317,पृ.146